मानवाधिकार, लोकतंत्र व भारतीय संविधान

दिनकर पाठक
शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर (उ0प्र0)

डॉ0 दिनकर त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर (राजनीतिशास्त्र)
परास्नातक राजनीतिशास्त्र विभाग,
फिरोज गाँधी कालेज, रायबरेली (उ0प्र0)

लोकतंत्र में सर्वाधिक प्रासंगिक बिन्दु 'अधिकार' होता है। सही मायने में देखा जाय तो लोकतंत्र की अभिधारणा, मांग व सृजन अधिकारों के इर्द–गिर्द घूमते नजर आती है। मानव स्वभाव से ही स्वार्थी व लाभ का इच्छुक होता है। वह जीवन पर्यन्त विशिष्टता, गरिमा, समानता, अवसर व प्रतिष्ठा की अभिलाषा रखता है। इन साध्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न उपायों व साधनों का एकत्रीकरण करता है, तथा वह उन सभी मार्गों का अनुसरण करता है जिससे इसकी प्राप्ति हो सकें। सामान्यतया इन साधनो को सामूहिक रूप से देखा जाय तो यह लोकतंत्र में अभिनिहित दिखती है। अधिकार स्वयं साधन सम्पन्न होते है तथा वे जिन मार्गों, नियमों या प्रावधानों द्वारा सृजित किए जाते है, भारतीय लोकतंत्र में इनका सीधा संबंध जनता से होता है। अब्राहम लिंकन की उक्ति 'लोकतंत्र जनता का जनता के लिए जनता द्वारा शासन होता है।' अर्थात् लोकतंत्र का निर्माण जनता व शासन से मिलकर बना होता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 'जन अधिकार' का विशेषणात्मक शब्द अधिकाधिक प्रयोग में लाया जाता है जिसका तात्पर्य सैध्दान्तिक रूप से 'मानवाधिकारो' से संबंधित होता है। मानवाधिकार स्वयं एक आदर्श लोकतंत्र की पहचान व विशिष्टता होती है! आदर्श लोकतंत्र में सभी को समान व संरक्षणीय अधिकार प्राप्त होते है जो वास्तव में एक उच्च मानवाधिकार मानक प्रस्तुत करते है। मानवाधिकार की अभिधारणा प्राचीनतम् आर्ष ग्रन्थों से लेकर आधुनिक विचारकों व राजनीतिक साहित्यों में प्राप्त होते है। इसका स्वरूप भी देश, काल, परिस्थिति तथा शासन तंत्र की विचारधारा के अनुरूप चलता रहा। वर्तमान युग (19वीं शताब्दी के मध्य) में यह पूर्णतः प्रत्येक व्यक्ति व समाज के लिए आवश्यक–सा प्रतीत होने लगा। मानवाधिकार समस्त जनता के अधिकारों का वह प्राप्ति योग्य अधिकार समूह है, जो विविध मानको, क्रियाओं और सर्वागीण विकास व वृध्दि के लिए परमावश्यक होते है।[1]

प्राचीन राज्य एथेंस में जब प्रथम बार सामूहिक रूप से जन मानस नें राजतंत्र के समक्ष अपने स्वयमेव अधिकार के विषय में पक्ष प्रस्तुत किया तो सर्वविदित है कि एक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई और कालान्तर में इन अधिकारों को प्रदान किया गया। लोकतंत्र सदैव जनमानस की इच्छाओं. आंकाक्षाओं के अनुरूप विस्तार होता है। सर्वोत्तम लोकतंत्र निम्नता से उठाकर जनता को शीर्ष पर पहुचाने का कार्य करता है। अर्थात् जो शोषित, वंचित तथा समाज से मुख्य धारा की गति में समायोजित नही हो पाते है, उन्हें अवसर व उच्चता प्रदान करता है। मानवाधिकार, समाज की उस अभिधारणा को साकार करने में सक्षम है जिसमें सभी एक पंक्ति व उद्देश्य में खड़े हो सकें।

किसी देश का संविधान उसकी सरकार के लिए सर्वोच्च विधिक राजनीतिक आलेख होता है। इसमें प्रजा के अधिकारों का भी विवरण होता है जो कि न्यायसम्मत होते हैं। सामान्य अर्थ में यह सत्ता का प्राधिकार एंव शासितों के प्रति शासकों की बाध्यताओं को प्रस्तुत करता है। ये बाध्यताएँ न सिर्फ सरकारी सत्ता की सीमा को ही बल्कि जनता की सरकार से अपेक्षाओं को भी बतलाती हैं।

किसी संविधान के लिए एक महत्वपूर्ण बात यह है कि भविष्योन्मुखी हो, ना कि अतीतोन्मुखी। ऐसी जनता जो अपने मामले रीति–रिवाजों एवं परंपराओं के अनुसार निबटाती है उसे संविधान की कोई आवश्यकता नहीं होती। उनके लिए अपने अग्रेजों की स्मृतियाँ ही काफी होती हैं। इतिहास साक्षी है कि जब भी कोई संविधान बनाया गया है, वह एक क्रांति के बाद बना है। किसी भी संविधान का मन्तव्य एक नई सामाजिक एंव राजनैतिक व्यवस्था को प्रवेश कराना रहा है।[2]

अठारहवीं शताब्दी में, जब विश्व में प्रथम लिखित संविधान सामने आया–संयुक्त राज्य अमेरिका में–1789 ई0 में एक संघीय गणतंत्रतात्मक सरकार की महज संकल्पना ही प्रस्तुत हुई। यह ब्रिटेन से राजतंत्रीय औपनिवेशिक संबंधों का सिलसिला तोड़ना था। सरकारी सत्ता हेतु सीमाओं के रूप में जनता के अधिकारों को समाविष्ट करते हुए दो वर्षो के भीतर ही संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान दस संशोधनों से गुजरा। धारणा यह थी कि जनता के पास स्वाभाविक रूप से, कुछ निश्चित अधिकार हैं और सरकार उनका हनन नहीं कर सकती। ये अधिकार उदार यथेच्छकारिता के सिध्दांत के रूप में सोचे गए जो कि जिंदगी, स्वतंत्रता एंव निजी संपत्ति के अधिकारों को प्रेरित करते हैं।

बीसवीं सदी में, अधिकारों की यह सोच कल्याण की दृष्टि से गहन हुई, और तो और समाजवादी विचारों में भी। विश्व के दूसरे संविधानों में भी नए अधिकार शामिल किए गए और पहले के अधिकारों के क्षेत्र को न्यायिक व्याख्या द्वारा विस्तार दिया गया। यहाँ तक कि अधिकारों के कथन भी दुरुस्त किए गए। इस प्रकार, अब के मृतक संयुक्त सोवियत समाजवादी गणतंत्र के संविधान में लाभकारी रोजगार को प्रत्येक नागरिक के एक मौलिक अधिकार के रूप में शामिल किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में, जनता के कमजोर वर्गों के हित को स्वीकार किए जाने को न्यायिक प्रमाण माना गया। आयरलैंड के संविधान में प्रजा के कल्याण हेतु कुछ नीति–निदेश जोड़े गए।[3]

ब्रिटेन से शक्ति के स्थानांतरण के पश्चात् भारतीय संविधान की घोषणा एक नए युग की शुरूआत थी। प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण, यह ब्रिटेन के राजतंत्रीय शासन के स्थान पर गणतंत्रात्मक लोकतंत्र की स्थापना था। आशान्वित रूप से, भारतीय संविधान ने विश्व का रूझान स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपनी जनता के अनुभवों द्वारा विरासत में ग्रहण किया। भारतीय संविधान में उदारवादी लोकतंत्र के ढाँचा को कायम रखा गया, परन्तु सरकारी दखलंदाजी के क्षेत्र को बढ़ाया गया जो कि सामाजिक सुधार एंव कल्याण को ध्यान में रखते हुए किया गया। नागरिकों के अधिकार रूप से विलोम प्रकृति के थे। समाज के लिए अस्पृश्यता निषेध है। राज्य को इसकी छूट है कि वह प्रजा के कमजोर वर्गों के सुधार हेतु विशेष कदम उठाए। संविधान में आइरलैंड के उन आदर्शों को भी अपनाया गया जिसमें सरकार को कल्याण–कारी कदमों को लेने के लिए आशावादी नीति–निदेश जारी किए गए हैं।

हर उदारवादी लोकतंत्रतात्मक संविधान की एक प्रस्तावना होती है जिसमें संविधान का सार निहित होता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना भी राजनीति के आदर्श उद्देश्यों का आलेख है।

प्रथम बिंदु जो ध्यातव्य है. भूमिका के अनुसार, यह है, 'हम, भारत की लोग' जो कि भारत के विधान सभा में हैं, अपनाते हैं, नियमबध्द करते हैं और खुद को यह संविधान अर्पित करते हैं। संक्षेप में संविधान प्राधिकरण, देश के सर्वोच्च कानून के रूप में, जनता से उत्पन्न हुआ है न कि किसी बाह्य सत्ता की दया से। अतः भारत एक लोकतंत्रात्मक, प्रभुतासंपन्न देश है। भारत गणतंत्र भी है। यह किसी भी प्रकार के वंशानुगत शासन को नहीं मानता।[4]

राज्य का लोकतंत्रात्मक स्वरूप जनता द्वारा संघीय संसद के प्रथम सदन एंव राज्य विधान सभाओं के चुनाव से सुनिश्चित होता है जिसका आधार वयस्क मताधिकार है। प्रत्येक निवासी, जो स्वस्थ मस्तिष्क का वयस्क नागरिक हो, तथा अपराध, भ्रष्टाचार या अनैतिक कार्य के लिए रोका न गया हो, वोट देने के लिए सूचीबध्द होने का अधिकारी है (संविधान का अनु0 326)।

संविधान सभी नागरिकों से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय का वायदा करता है; वैचारिक अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और पूजा की स्वतंत्रता देता है; स्तर और अवसर की समानता तथा व्यक्ति विशेष की शान को ध्यान में रखते हुए भाईचारे को बढावा देता है। 1976 ई0 में एक संशोधन के तहत धर्मनिरपेक्षता एंव समाजवाद की स्थापना का उद्देश्य प्राप्त करने और राष्ट्र की एकता एंव अखण्डता को कायम रखने की घोषणा की गई।

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का अभिप्राय कभी भी लादा नहीं जा सकता। अँग्रेजों ने भारत में विधायिका में चुनाव प्रणाली को शुरू किया। जब तक नया संविधान लागू नहीं हुआ, फिर भी, भारत के केवल 15 प्रतिशत वयस्कों को मत डालने का अधिकार था, मताधिकार संपत्ति एंव अकादमिक योग्यताओं द्वारा प्रतिबंधित था। प्रयत्न द्वारा इसको सार्वभौमिक बनाया गया और यह सरकार के बनने तथा न बनने की कुंजी बन गया।

संविधान ने न केवल जनता को अपने भाग्य का अंततः मुखिया बनाया है, बल्कि उन्हें समान भी बनाया है। भारत का पारंपरिक सामाजिक तंत्र मजहब तथा वंशवादी अलगाव में बँटा था और जातियों की दीवारों से पटा था। इस प्रकार इसने अपना खरापन खो दिया था। व्यक्ति–व्यक्ति शासन की मूल इकाई बन गया। हर व्यक्ति को सभी प्रकार के शासकीय एंव आर्थिक अधिकार दिए गए। इसी समय, अल्पसंख्यक वर्गों को कुछ सांस्कृतिक अधिकार भी मिले।[5]

भारतीय संविधान के तहत दो प्रकार के अधिकार हैं : कुछ तमाम 'जनता' को दिए गए है तथा कुछ केवल 'नागरिकों' को। प्रथम प्रकार के अधिकार गैर–नागरिकों के लिए भी हैं और इसमें शामिल हैं–कानून के समक्ष समानता एंव कानून की एक समान सुरक्षा (अनु० 14), गैर–कानूनी दोष सिध्दि से सुरक्षा (अनु0 20), जीवन–यापन एंव आत्मिक स्वतंत्रता (अनु० 21), अवैध प्रतिरोध से सुरक्षा (अनु० 22), मानवों की भीड़ में शोषण तथा सार्वजनिक उद्देश्य के अलावा बेगार लेने के विरूध्द अधिकार (अनु० 23), बच्चों को खतरनाक रोजगार के विरूध्द अधिकार (अनु० 24), मजहब की स्वतंत्रता (अनु0 25), मजहबी मामलों के प्रबंध हेतु मजहबी संस्थाओं को स्वतंत्रता (अनु0 26), तथा करों के भुगतान से मुक्ति जो कि विशेषतौर से किसी मज़हब विशेष या मजहबी संस्थाओं के लाभ की प्रक्रिया में हों (अनु0 27)।

मज़हबी संस्थाओं द्वारा संचालित विद्यालयों में लादे गए मज़हबी निर्देशों से स्वतंत्रता (अनु0 28), अल्पसंख्यकों की सुरक्षा (अनु० 29), अल्पसंख्यकों को इच्छानुसार शैक्षिक संस्थान को स्थापित एंव संचालित करने का अधिकार (अनु० 30), संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनु0 32 और अनु0 226) तथा कानून प्राधिकार सम्मत संपत्ति से वंचित न करने का अधिकार (अनु० 300ए)।

अन्य सभी अधिकार जो नागरिकों को हैं, वे हैं राज्य द्वारा भेदभाव के विरुद्ध अधिकार (अनु० 15), सार्वजनिक रोजगार में अवसरों की समानता का अधिकार (अनु० 16), अस्पृश्यता के विरुद्ध अधिकार (अनु० 17), सेना या शिक्षा के सिवाय राज्य

उपाधियों के निर्माण के विरूध्द अधिकार (अनु० 18), भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, शांतिपूर्वक एंव निहत्थे एकत्र होने का अधिकार, संस्थाएँ या संघ निर्माण का अधिकारं, स्वेच्छापूर्वक तमाम भारतीय भूखण्ड में घूमने का अधिकार और भारतीय भूखण्ड के किसी भी हिस्से में रहने तथा बसने का अधिकार और किसी भी व्यवसाय को अपनाने तथा किसी भी उद्योग या व्यापार करने का अधिकार (अनु० 19)।

अधिकारों की प्रकृति[6]

अधिकारो के विषय में अग्रलिखित बिंदु विचाणीय हैः (1) ये अधिकार विलोम प्रकृति के हैं क्योंकि ये अधिकारियों को इनका उल्लंघन करने से रोकते हैं। (2) जब कि इन अधिकारों में से ज्यादातर राज्य के विरूध्द हैं, इनमें से कुछ, जैसे अस्पृश्यता के विरूध्द अधिकार (अनु० 17) और अल्पसंख्यकों को सुरक्षा का अधिकार (अनुव 29), समाज के विरूध्द हैं। (3) जबकि ज्यादातर अधिकार व्यक्ति विशेष के लिए हैं, कुछ वर्गों के लिए हैं (अनु0 27, 29 और 30। (4) ज्यादातार अधिकार शर्त–आधारित हैं कि अधिकार से पूर्व सार्वजनिक हित, कानून एंव व्यवस्था, मर्यादा और प्रजा के कमजोर वर्गों का हित आदि पर विचार किया जाए। भारत में अधिकारों की प्रकृति को समझने में ये बिंदु महत्वपूर्ण हैं। परंपरावादी उदारवादी लोकतंत्र जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिकारों को विलोम रूप से बनाया गया था जिससे राज्य उनका हनन नहीं कर सकते। समाज के अन्य सदस्यों द्वारा उन अधिकारों की सुरक्षा का मसला राज्य कि विधि और कानून व्यवस्था द्वारा निभाया जाता है। उदाहरणार्थ, यू० एस ० ए० में जातीय दंगे, अपराधात्मक कानून के ही अंतर्गत निपटाए जाते हैं, जिसके लिए राज्य संवैधानिक तौर पर बिना किसी भेदभाव के ऐसा करने को बाध्य है। दूसरी तरफ, भारत में ऊँच वर्ण के लोगों द्वारा अस्पृश्यता सीधे–सीधे संविधान के प्रति अपराध है। इसी प्रकार, बहुसंख्यक समुदाय द्वारा अल्पसंख्यकों के आधिकारों का उल्लंघन संविधान के समक्ष अपराध है। यह सीधे–सीधे राज्य का संवैधानिक कर्तव्य है कि वह दलितों (अनुसूचित जातियों के लोग), आदिवासियों (अनुसूचित जनजातियों से संबंधित लोग) और मजहबी तथा भाषाई अल्पसंख्यकों के सामाजिक अधिकारों की रक्षा करें।

पहले के उदार संविधानों से भारत के संविधान का एक अन्य महत्वपूर्ण अंतर है अधिकारों की सीमाओं की विशिष्टता। संयुक्त राज्य अमेरिका में इन सीमाओं का निर्धारण न्यायालयों द्वारा होता है और ये न्यायाधीशों के निजी मत पर आश्रित होते हैं। इन निजी मतों का भारत में निषेध तो नहीं है परन्तु वे संविधान सम्मत होने ही चाहिए। जैसा कि बताया जा सकता है सांवैधानिक सीमाओं का सरोकार न केवल कानून एंव व्यवस्था से है वरन्, सर्वसामान्य के हित में भी हैं जिसमें सामाजिक संपन्नता, नैतिकता और समाज के कमजोर वर्गों के कल्याण भी निहित हैं।

अंततः संविधान में वर्णित वर्गों और व्यक्ति विशेष दोनों की सम्मति देश के मजहबी इतिहास का दुःखद परिणाम है। भारतीय संविधान की मजहबी तथा भाषाई अल्पसंख्यकों और कमजोर वर्गों के प्रति वचनबध्दता, उन यूरोपीय संविधानों की याद दिलाता है जो कि दो विश्व युध्दों के मध्य अल्पसंख्यक संधियों के तहत् बनाए गए जिसमें राज्यों को उनकी स्थापना से पूर्व हस्ताक्षर करने पड़े। उन देशों में पोलैंड, योगोस्लाविया और चेकोसोस्लावाकिया हैं। अंतर यह है कि इन यूरोपीय राज्यों ने कभी भी गंभीरता से उन्हें लागू नहीं किया। भारत में इनको पूर्ण गंभीरतापूर्वक लागू किया जा रहा है। इस प्रकार भारतीय संविधान में प्रदत्त अधिकारों की बनावट सामाजिक परिवर्तन में राज्य की सक्रिय भूमिका को ध्यान में रखती है।

राज्य की एक अन्य सीधे–सीधे सक्रिय भूमिका सतत् सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन को लाना है जिसके लिए भारतीय संविधान में राज्य की नीति के कुछ नीति–निदेशक सिध्दातों को वर्णन किया गया है। ये सिध्दांत न्यायालय द्वारा सीधे लागू नहीं किए जाते हैं। परंतु न्यायालय संविधान की व्याख्या करते समय, मौलिक अधिकारों सहित उनके द्वारा मार्गदर्शन लेते हैं। संविधान राज्य को आदेश देता है कि वह शासन में मूलरूप से उनका आदर करें और नियमों को बनाते समय उनका पालन करें।

लोककल्याण एंव गौरवपूर्ण जीवन [7]

राज्य के लिए सबसे मौलिक नीति–निर्देश है। एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को सुनिश्चित करने का प्रयास करना जिसमें न्यायिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक इकाइयाँ, सभी संस्थानों को अपनी राष्ट्रीय जिंदगी जीने को प्रेरित करें। विशेषतौर से राज्य, वेतनों की असमानता को कम करें, और स्तर, सुविधाओं और अवसरों की असमानता को खत्म करें। न केवल व्यक्ति–व्यक्ति में वरन् विभिन्न क्षेत्रों में रह रहे या विभिन्न उद्यमों में संलग्न व्यक्तियों में (अनु0 38)।

विशेषतौर से राज्य ऐसी नीतियों को प्रोत्साहित करे जिसमें स्त्री एंव पुरूष सहित सभी नागरिकों को समान रुप से जीविकोपार्जन के माध्यम उपलब्ध हों, मालिकाना हक और नियंत्रण में सर्वहित को सर्वोपरि माना जाए, संपत्ति और उत्पादन के माध्यमों का ध्रुवीकरण न हो ताकि सार्वजनिक अहित न हो, स्त्री–पुरूष दोनों के लिए समान काम के लिए समान वेतन सुनिश्चित हो, श्रमिकों, स्त्री व पुरूषों के स्वास्थय एवं सामर्थ्य की रक्षा हो, बालकों को व्यसनों से बचाया जाए और उन्हें उनके विकास के स्वास्थ्यपूर्ण, स्वतंत्र एंव गरिमापूर्ण अवसर दिए जाएँ (अनु0 39)।

कानून के दायरे में [8]
संविधान के भाग–4 के अनुच्छेदों में इन मूल उद्देशयों की व्याख्याएँ हैं। राज्य समान अवसरों के आधार पर न्याय सुनिश्चित करने हेतु कानून तंत्र के चालन को प्रोत्साहित करे और विशेषतौर से, उपयुक्त विधायी नियमों या नीतियों या अन्य तरीकों से निःशुल्क कानूनी सहायता उपलब्ध कराए. इसको सुनिशिचित करें कि न्याय दिलाने के अवसरों से कोई भी नागरिक आर्थिक, और दूसरी अयोग्ताओं के कारण वंचित न रहे (अनु0 39ए, 1977 में जोड़ा गया 42वाँ संविधान संशोधन)। राज्य इसका भरकस प्रयास करें कि संपूर्ण भारतीय क्षेत्र में एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित हो (अनु0 44)। राज्य की सार्वजनिक सेवाओं में राज्य न्यायपालिका को कार्यकारिणी से विलग करने के कदम उठाए (अनु0 50)। राज्य ग्राम पंचायतों को गठित करने के कदम उठाए और उन्हें आवश्यक शक्तियों तथा प्राधिकारों से संपन्न करे ताकि वे स्वावलंबी सरकार की इकाइयों के रूप में समर्थ हों (अनु0 40)।

आर्थिक दायरे में [9]
आर्थिक दायरे के अंतर्गत और भी संरक्षित वायदे हैं। राज्य, अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की परिधि में, काम के अधिकार, शिक्षा को सुनिश्चित करने हेतु प्रभावी कदम उठाए, और बेरोजगारी, वृध्दावस्था, बीमारी और विकलांगता तथा अन्य सामर्थ्यहीनता की दशा में सार्वजनिक सहायता दें।
काम का अधिकार यूँ ही किसी भी उदारवाद प्रजातांत्रिक राज्य द्वारा स्वीकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि यह उत्पादन के सभी साधनों पर नियंत्रण नहीं करता। सामाजिक बीमा की प्रथा भी केवल विकसित औद्योगिक देशों में उपलब्ध है, हॉलाकि यह प्रक्रिया अस्थाई है। एक विकासशील देश, जैसे भारत के लिए सभी के लिए काम और या सामाजिक बीमा, स्पष्ट रूप से बहुत ज्यादा आशा करना ही है। राज्य प्रजा के पोषण के स्तर के उत्थान तथा जीवन–स्तर पर ध्यान देना और सार्वजनिक स्वास्थ्य को सुधारना अपनी मौलिक जिम्मेदारी समझे और, विशेषतौर से, मादक तथा हानिकारक औषाधियों को चिकित्सकीय उद्देश्यों के अलावा उपभोग के निषेध का हर संभव प्रयत्न करें (अनु० 47)।

श्रमिकों के अधिकार [10]
राज्य, काम की उपयुक्त तथा मानवीय स्थितियों को संरक्षित करने और मानव को आराम पहुँचाने के उपाय करे। राज्य उपयुक्त विधान या आर्थिक प्रबंधन या किसी अन्य प्रकार से यह संरक्षित करने के प्रयास करे, ताकि उद्योग, कृषि या अन्य कार्य में संलग्न सभी श्रमिकों को जीविका वेतन, जीवन के उचित स्तर के मुताबिक काम की परिस्थितियों तथा खाली समय में पूर्ण मनोरंजन और सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवसर उपलब्ध हों और, विशेषतौर से, राज्य ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्ति स्तर पर या सहभागिता स्तर पर कुटीर उद्योगों के प्रोत्साहन का प्रयास करे (अनु0 43)। संविधान के 42वें संशोधन के अनुसार, राज्य, उपयुक्त विधान या अन्य प्रकार, इसके कदम उठाने आदेश जारी करे, ताकि किसी संस्था के व्यवसायों के प्रबंधन, अन्य किसी उद्योग में संलग्न संस्था के प्रतिष्ठानों में श्रमिकों की भागीदारी हो (अनु० 43)।

बच्चों एवं कमजोर वर्गों के लिए [11]
राज्य को निदेशित किया गया है कि वह 10 वर्षों के अंतराल में (संविधान की घोषणा से) चौदह साल तक के सभी बालकों को निःशुल्क शिक्षा मोहैया कराए (अनु0 45)।
राज्य, कमजोर वर्गों के लोगों के शैक्षिक तथा आर्थिक हितों को विशेष सावधानी से प्रोत्साहित करे, और, विशेषतौर से, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों को किसी भी प्रकार के सामाजिक अन्याय तथा शोषण से बचाए (अनु0 46)।

कृषि व पर्यावरण के दायरे में[12]
राज्य, कृषि और उद्योगों का आधुनिक विज्ञान की तर्ज पर विकास का प्रयास करे (अनु० 48)।यह राज्य का दायित्व है कि वह संसद द्वारा घोषित हर राष्ट्रीय महत्व के स्मारक या स्थल या ऐतिहासिक दृष्टि की वस्तु की रक्षा करे, उन्हें विरुप, नष्ट, हटाए जाने, खत्म करने या तस्करी करने, जैसी परिस्थिति हो, से बचाए (अनु0 49)।
अनु. 48ए, 1977 ई0 में समाविष्ट 42वें संशोधन के आदेशानुसार राज्य का यह भी कर्तव्य है कि वह देश के पर्यावरण का संरक्षण तथा सुधार करे और वनों एवम् वन्य जीवन की रक्षा करे।
यह अभिधारणा राष्ट्रीय आंदोलन में विकसित अभिलाषाओं पर केंद्रित है जो कि भारत के संविधान में उल्लिखित हैं, यही भारत की राजनीति का सर्वोच्च विधि–राजनीतिक परवाना है। भारतीय संविधान अपने–आप में अनुलोमात्मक बिंदु संजोए है जो कि विश्व भर की जनता के अनुभवों पर आधारित हैं। वास्तव में, प्रस्तावना में संविधान सार है, सर्वाधिक बल जनता के अधिकारों की रक्षा करना और हर प्रकार का न्याय दिलाना है। राज्य की नीति के निदेशक तत्व भी प्रस्ताविक हैं जो कि शासन की नीति के मूल हैं। यह श्रमिकों, बच्चों एंव कमजोर वर्गों के आधिकारों की रक्षा और देश के कृषि, पर्यावरण वन एंव वन्य–जीवन के पालन, विकास तथा सुरक्षा को भी सुनिश्चित करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1 द डायलागिंग ऑफ पीस एण्ड डेवलपमेंट, ईवान इविच, पी0 पब्लिकेशन, गाँधी मार्ग, नई दिल्ली, 257651, 1981, पृ0सं0–92 से 93

2 मल्टिपल आइडेंटिजीज इन अ सिंगल स्टेट, अरोड़ा, बलबीर एवं दुगलस बी0 वसे, कोणार्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ0सं0– 14 से 15

3 भारत का संविधान, डॉ0 जे0एन0 पाण्डेय, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद पृष्ठ संख्या–44 से 45

4 भारत का संविधान, डॉ0 जे0एन0 पाण्डेय, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद पृष्ठ संख्या–56 से 57

5 भारत का संविधान, डॉ0 जे0एन0 पाण्डेय, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद पृष्ठ संख्या–102–103

6 भारतीय संविधान में डॉ0 सुभाष कश्यप, रागिनी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0संख्या 14 से 15

7 भारतीय संविधान और विधि, डॉ0 बसन्ती लाल बावेल, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन, इलाहाबाद पृ0सं0 34–35

8 भारतीय संविधान और विधि, डॉ0 बसन्ती लाल बावेल, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन, इलाहाबाद पृ0सं0 51–52

9 भारतीय संविधान और विधि, डॉ0 बसन्ती लाल बावेल, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन, इलाहाबाद पृ0सं0 110–111

10 भारतीय संविधान (वेयर एक्ट) संस्करण–2018, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृ0सं0–94–95

11 भारतीय संविधान (वेयर एक्ट) संस्करण–2018, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृ0सं0–114

12 भारतीय संविधान (वेयर एक्ट) संस्करण–2018, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन इलाहाबाद, पृ0सं0–93–94